इंद्रधनुष की तलाश में

उषा 'राजे' सक्सेना

इन्द्रधनुष की तलाश में

उषा 'राजे' सक्सेना

उषा 'राजे' सक्सेना

इस आनी-जानी दुनिया में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो घर-बाहर, अंतर-बाह्य से यकसां होते हैं। गोरखपुर में जन्मी, इंग्लैण्ड में भारतीय साध्वी और स्वातिका उषा 'राजे' सक्सेना हिन्दी-साहित्य की सोंधी-सोंधी खुशबू से वंचित नहीं रह पाई। ब्रिटेन में शिक्षणकार्य करती उषा दुर्लभ बाल साहित्य एवं हिन्दी तथा अंग्रेजी में कविताएं एवं लेख आदि लिखती हैं जो भारत एवं लंदन की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। अनेक कवि-सम्मेलन, सांस्कृतिक अनुष्ठानों की विद्यार्थी उषा 'राजे' सक्सेना हिन्दी, हिन्दीसाहित्य के प्रचार-हेतु 'हिन्दी-समिति' की सक्रिय सदस्या हैं। मित्र राष्ट्र इंग्लैंड में रहते भारतीय चिन्तन और साहित्य की सुरभि बिखेरती उषा जी 'उषा' की नित्य अरुणिमा बनी रहें।

बैनीकृष्ण शर्मा

सम्पादक 'अंजुरि'

नई दिल्ली (भारत)

'इन्द्रधनुष की तलाश में' के लिए अपनी ओर से इतना ही कहूंगा कि दूर देश में रहकर भी उषा ‘राजे’ सक्सेना ने हिन्दी भाषा की अपनी प्रकृति और अपनी जमीन से अपना लगाव बनाये रखा है। कविता उनके लिए सहज स्फूर्त अनुभव है। कविता का रूप, शिल्प, कविता की समकालीनता की चिंता किये बगैर वे अनुभव की आत्मीयता प्रमाणित कर सकी हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हार्दिक कामनाओं के साथ-

परमानंद श्रीवास्तव

एमेरिटस प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

गोरखपुर (भारत)

उषा जी उस इन्द्रधनुष कि तलाश में हैं जो हम सब को आकर्षित करता है। ये कविताएं हैं उस तलाश का सफरनामा। हरेक यात्रा की भांति इस यात्रा में भी कई प्रकार के अनुभव भोगे जाते हैं-उल्लास के भी क्षण हैं, डर के भी; कहीं आशा की लौ झलकने लगती है, कहीं निराशा के बादल छा जाते हैं। यह एक अत्यंत भावात्मक जगत है जिसको उषा की किरणों ने आलोकित कर दिया है-भावनाओं का सुंदर भवन है जिसके कई कमरों में हमें भ्रमण करने का निमंत्रण प्रस्तुत किया जा रहा है। आइए, प्रवेश करके देखें.....

डॉ. रूपर्ट स्नेल

स्कूल ऑफ ओरिऐण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज

लंदन विश्वविद्यालय

लंदन

इंगलैण्ड में प्रवासी भारतीय के रूप में जीवन-यापन करने वाली उषा 'राजे' सक्सेना सर्जनात्मक प्रतिभा-संपन्न एक ऐसी कवयित्री हैं जिनके अंतस्तल में अपने देश, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, जीवन और प्रकृति के प्रति गहरा और सच्चा राग है। 'इन्द्रधनुष की तलाश' की कविताएं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

उषा 'राजे' सक्सेना स्वानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति में विश्वास रखती हैं और तदनुकूल शब्द-साधना भी करती हैं। उनकी कविताओं में एक ऐसा अनुभव-लोक और विचार-दर्शन है जो उन्हें एक साथ यथार्थजीवी और स्वप्नदर्शी दोनों प्रमाणित करता है। उनकी कविताएं हताशा, निराशा और उदासी के बीच जीवन के प्रति गहरी लालसा जगाती हैं और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करके अभीष्ट को पाने की विकलता भी पैदा करती हैं। उनकी कविताओं में स्वप्न, ललक, जिज्ञासा, चिन्ता, उद्वेग, कामना, संघर्ष, सहा, तड़प, बेचैनी आदि की अभिव्यक्ति कुछ इस तरह हुई है कि उनकी कविताओं को 'आकुल प्राणों की पुकार' कहा जा सकता है। महत्वपूर्ण और स्तम्भित करनेवाला तथ्य तो यह है कि उनकी कविताओं का शिल्प सधा हुआ और समकालीन हिन्दी कविता के साथ अपनी अंतरंगता प्रमाणित करने वाला है।

भाव, भाषा, विचार, शिल्प आदि सभी दृष्टियों से यह एक अच्छा कविता-संकलन है। विश्वास किया जा सकता है कि हिन्दी-जगत् में इसका भरपूर स्वागत होगा।

डॉ. कृष्णचन्द्र लाल
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर- 273001

महान हिन्दी-सेवी

दार्शनिक, चिन्तक एवं कूटनीति

महामहिम भारतीय उच्चायुक्त

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी एवं

श्रीमती कमला सिंघवी को

सादर समर्पित!

बहुत कुछ पाने के बावजूद खोने की तड़प

किसी भी रचनाकार की रचना-विशेष पर आलोचना करना, कम से कम मेरे लिये., सहज कार्य नहीं है। समय के बदलने के साथ-साथ साहित्य का तेवर भी बदला है। अब उसका भूगोल बहुत व्यापक हो गया है इसलिये भारतीय हो अथवा पश्चिमी, आलोचना के पैमाने वहां काम नहीं देते। मेरी समझ में रचनाकार की तरह आलोचक को भी अपनी तीसरी आंख का सहारा लेना होगा, तभी वह रचनाकार की मानसिकता के भीतर झांक कर उसके संवेदन का स्पर्श कर सकता है। दूसरे शब्दों में आलोचना रचना का पुनर्सृजन होता है। अंग्रेजी में इसे 'क्रियेटिव क्रिटिसिज्म' कहते हैं।

रचना-धर्मिता में कविता की आलोचना करना तो और भी कठिन कार्य है क्योंकि कविता में कवि स्वयं अपने को लिखता है, उसका अपना एक अलग परिवेश होता है, संस्कार और स्वभाव में भी भिन्नता होती है और कविता में आने वाले शब्द-विशेष वहां ठोस अर्थात् रूढ़ अर्थ देने वाले नहीं होते वरन् पोले होते हैं जिनके भीतर से हवा गुजरती है; संगीत गूंजता है; छवियां नाना-रूपों में बिम्बित होती हैं और प्रतीक अपने समय की मांग के अनुसार नया अर्थ देते चलते हैं। ऐसे में आलोचक को कवि-धर्मा होना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो आलोचक का सौंदर्य-बोध कवि के सौंदर्य-बोध को पहचानने में चूक सकता है। वैसे भी कवि-कर्म मधुमक्खी के समान होता है जो हर फूल (वातावरण) से रस अवश्य लेती है लेकिन उस पर आघात नहीं करती। आलोचक को भी कवि की तरह रस-ग्रहण की ओर जाना चाहिए। यदि वह भौंरा बना तो इधर फूल पर आघात और उधर कविता के मर्म पर चोट! श्रीमती उषा 'राजे' सक्सेना की कविताओं पर अपने विचार प्रस्तुत करने से पूर्व इतना अवश्य कहूंगा कि उषा जी मूलत: भारतीय हैं और बाद में प्रवासिनी। जाहिर है कि दो भिन्न-भिन्न परिवेशों-संस्कारों और भाव-बोधों के बीच उनकी कविताओं का सृजन हुआ है। दूसरे शब्दों में कहें तो कहना होगा कि उनके इन्द्र-धनुष की तलाश दो विभिन्न प्रकृति के वातावरणों से मिली-जुली संवेदन-अनुभूतियों की 'कॉकटेल' हैं-यह बात दीगर है कि भारतीय अस्मिता के संस्कारों का पलड़ा इनकी कविताओं में भारी पड़ता है।

उषा 'राजे' सक्सेना से मेरी पहली मुलाकात नवम्बर 27, 1996 को दिल्ली की एक काव्य-गोष्ठी में हुई।

वहां, पहली बार उनके मुख से पांच-छह कविताएं सुनने को मिलीं, साथ में उनकी रचना-प्रक्रिया पर उनके अनुभव भी। उनकी रचना-मानसिकता में झांकते सहज ही मैंने अनुभव किया कि प्रवास में रहते हुए भी भारतीय संस्कार उन पर हैं। पिछुआ हवा ने केंचुली बन उनके अर्जित संस्कारों को अन्धा होने से बचा लिया हैं। लंदन के परिवेश में रहते हुए उन्होंने वहां की यांत्रिक एक-रसता को बहुत करीब से देखा, भोगा और महसूस किया है, तब कहीं जाकर पत्थर होती जा रही उनकी संवेदना में पानी का बन्द सोता अपनी कविताओं के माध्यम से अलग-अलग दिशाओं में फूट-फूट कर वह निकला है। यह पत्थर होना यदि एक ही कविता में देखना हो तो एक 'मुर्दा शहर' जैसी स्वत: स्फूर्त, संवेदनशील और वैचारिक यथार्थ की विडम्बना को दर्शानेवाली कविता में देखा जा सकता है।

इस संकलन में एक और कविता है- 'तुम्हारी जड़ें'। भारतीय अस्मिता पर आस्था रखती नाना-विम्बों उघर छवियों में आपको ऐसे स्वस्थ विचार मिल जायेंगे। उषा जी का यह सोचना कतई असंगत नहीं है कि फूल-पत्तों का रंग-विलास क्षणजीवी है। समय-चक्र के बहकावे में वह व्यक्ति-समाज को भ्रमित तो कर सकता है लेकिन आत्म-संतोष नहीं दे सकता। ऐसी संतुष्टि का मूल तो है व्यावहारिक ठोस परम्पराएं। वसन्त और पतझड़ तो मौसमी हैं। इनसे रिश्ता जोड़ते घर-समाज और राष्ट्र का इन्द्रधनुषी सपना साकार नहीं हो सकता। उसके लिये तो पहले व्यक्ति को राष्ट्रीय होते जड़ों की ओर लौटना होगा, जो एक-दूसरे से गहरे में रसी-बसी राष्ट्र को संगठित सांस्कृतिक बोध देती है। उषा जी की अधिकांश कविताओं में आप पायेंगे कि उनका अपने अतीत की स्वस्थ परम्पराओं से बड़ा लगाव है। यही खास बात है जो प्रवासी कवयित्री को भारतीय अस्मिता से जोड़ती है। जैसा मैंने अभी-अभी कहा अतीत की ठोस एवं स्वस्थ परम्पराओं के प्रति उनका बेहद लगाव है, इसके चलते यह स्पष्ट कर देना भी जरूरी है कि उषा जी की कविताएं भारतीय परम्पराओं का अन्ध अनुकरण नहीं करतीं। उनकी कविताओं में परम्परा के नाम पर जहां अपनी मातृ-भूमि की सुगन्ध अच्छी लगती है वहां वे अपने देश की विकृत होती हुई हवाओं से पूर्णत: परिचित हैं और यह प्रदूषण उन्हें अपने गहरे में बहुत सताता है। यह प्रदूषण चाहे नैतिक मूल्यों के स्थूलन का हो या नारी-दासता का हो अथवा कर्म-हारा समाज की उपेक्षा का हो। ऐसी कविताओं को पढ़ते हुये लगता है जैसे उषा जी का भारत के प्रति लगाव रोमानी कम रोमैन्टिक ज्यादा है

जो अपनो को अपनेपन का एहसास भी दिलाता है और उनके पटरी से उतर जाने का त्रासद् यर्थाथ भी। 'यादों के तीर' जैसी कविताओं में वे युवा पीढ़ी को स्पष्ट कर देना चाहती हैं कि प्रेम 'सेक्स' की पाश्चात्य उतरन नहीं है। वह याद है; त्याग है; समर्पण है; अतीत है और सम्बन्धों का आत्म है। भारत के प्रेम और पश्चिम के सेक्स को कलात्मक बिम्बों में उभारते कवयित्री ने दोनों के बीच सीमा-रेखा तय कर दी है।

भारतीय होते हुये भी भारतीय अस्मिता के नासूर से भी वे भली-भांति परिचित हैं। लगता है कहीं उनके अवचेतन में 'महाभारत' के ‘शान्तिपर्व' का बाप-दादा से सुना यह सूत्र बार-बार कौंधता रहा होगा कि इस विश्व में मनुष्य से बढ़ कर और कोई श्रेष्ठ नहीं है। अपनी इस विरासत में उषा जी का दृष्टिकोण मानवतावादी है। भारत की शुद्ध संस्कृति उन्हें प्यारी है मगर वह रूढ़ परम्परा नहीं जो मरे हुए सांप की तरह हमारे गले में लिपटी रहे। इस मायने में 'दलित' उनकी श्रेष्ठ कविताओं में से एक श्रेष्ठतम कविता है, जिसमें गान्धी, अम्बेदकर से लेकर विवेकानन्द तक का ‘वसुधैव कुटुम्बकम्' बोलता है। कर्महारा समाज को उपेक्षित करते जब उपभोक्ता समाज आदमी और आदमी में वैषम्य जगाता अपना सर उठाता है तब समझो उस देश विशेष की आर्थिक-सांस्कृतिक अमावस हो गई। 'दलित' कविता इसी मायने में विशेष है कि यह विश्व की समस्या होते हुये भी भारतीय परिवेश में बहुत अहमियत रखती है। आजादी के पचास साल गुजर गए मगर दलित बदतर से बदतर हुआ है। अब उसकी और अधिक उपेक्षा नहीं की जा सकती:

'वो गर्द धूल नहीं

रजकण है

माथे से लगा लो

तिलक वन जायेगा

थोड़ा पानी दो

मिट्टी बन जायेगा

डाल दो एक बीज

तो नवजीवन से भर जायेगा।'

जैसे कवयित्री नरी-अस्मिता के प्रति सजग होते हुये भी पश्चिम से उपजे 'फेमिनिस्ट' आन्दोलन से परहेज करती नारी और पुरुष में 'अर्द्धनारीश्वर' के प्रतीक को आज के परिवेश में सुसंगत मानती है वैसे ही वह पुरुषों में वर्ग-वैषम्य नहीं देखना चाहती। अब यह समझ की बात है, कम-से-कम उन राज-नेताओं के लिये जो नारा तो राष्ट्रीयता का देते हैं-दलितों के कर्म का शोषण करते 'क्रीमी लेयर' बनते हैं और उन्हें हाशिये में डालते तथा विभाजित करते अपनी क्षुद्र राजनीति कर रहे हैं। कवयित्री चेताती है :

'राह में बिछा है ना मार ठोकर

आंख की किरकिरी बन जायेगी'

इनकी एक और कविता है 'पानी'। अन्योक्ति के हिसाब से यह कविता भी इसी परम्परा की एक समानधर्मी छवि है। पानी कुछ और नहीं, ऐसा संवेदन-भाव है जो आदमी और आदमी के बीच रागभाव जगाने का संकेत देता है। प्रवास में रहते इस तरह की वैषम्यपूर्ण स्थितियों को भारतीय परिवेश में जब उषा जी अभिव्यक्त करतीं है तो लगता है सात समुन्दर पार रहते हुये भी उनकी निगाह भारत पर है, दिनकर के इन शब्दों की तरह-- 'पंछी कितना उड़े आकाश, दाना है धरती के पास'। जाहिर है अपने वातावरण विशेष के सर्द, बर्फानी मौसम में 'आन्तरिक ताप' की खोज उनमें बराबर कायम है। ठन्डे देश में रहती-बसती भारतीय आत्मा की ऊष्मा का परिचय दे ही देती है उषा की कविताएं।

मेरी नजर में समकालीन कविता में आंकने के लिये दो ही पैमाने अपेक्षित हैं-पहला दृष्टि तो दूसरा सृष्टि। दूसरे शब्दों में इन्हें बनावट और बुनावट भी कहा जा सकता है। दृष्टि अथवा बनावट के कुछ पहलू दर्शाने के बाद यह जरूरी हो जाता है कि उषा जी की कविताओं की सृष्टि अर्थात बुनावट पर भी कुछ कहा जाये। कविता-विशेष में दृष्टि अथवा विचार कितना ही संपन्न क्यों न हो अगर वह संवेदन की आंच में तप कर तरल नहीं हो जाता तो ऐसी कविता के मायने क्या हैं? कहना होगा, 'हिन्दी भाषा' जैसी दो-एक लम्बी कविताएं ऐसी हैं जहां वैचारिक बोझ में संवेदना की तरलता दब गई है। वैसे अपनी अधिकांश कविताओं में उषा जी शब्द की कीमत पहचानती हैं और शब्दों का ऐश्वर्य के नाम पर विलास-खिलवाड़ नहीं करतीं। उर्दू के अंदाज में कहूं तो उनकी कविताओं में अल्फाज की बंदिश है। शब्दों की किफायत है और ख्याल की नजाकत है। और, समकालीन

हिन्दी-कवियों की परम्परा से देखूं तो महसूस करता हूं कि उनकी कविता अज्ञेय, शमशेर, और मलयज की परम्परा को आगे बढ़ाती अपनी कविताओं में शब्दों के सीमित प्रयोग से असीमित अर्थ-छवियों का इस्तेमाल करने की हामी हैं। कवयित्री के शब्द ठोस अर्थात शब्दकोशीय रूढ़ अर्थ नहीं देते। उनके शब्द बांसुरी हैं; खोल का पोल हैं; स्वर-लहरियां हैं। राजनीति ने इसका फायदा उठाते साहित्य में 'ग्लोबलाइजेशन' का नारा उछालते बाजारीकरण और संस्कृति-हास का ऐसा छद्‌मयुद्ध खेला है कि सुख-सुविधा की संगीत लहरियां अब वहां गूंजती हैं। तीसरी दुनियां में तो लय से जुड़ा समाज लयहीन हो गया है।

उषा जी की अधिकांश कविताएं यद्यपि मुक्त छन्द में लिखी गई हैं लेकिन समय की नब्ज को पहचानते उन्होंने लयहीन समाज को अपने नवगीतों के माध्यम से लय में जोड़ने की कोशिश की है। यह इनका प्रसंशनीय सृजनात्मक कार्य है-यह बात दीगर है कि इस प्रयास में जिस छन्द-अनुशासन की बहुत बड़ी अहमियत है, उसमें वो अधिक पारंगत नहीं दिखतीं। फिर भी, बहुत कुछ लययुक्त है जिसको पढ़ते पाठक इनको अवश्य सराहेगा।

'इन्द्रधनुष की तलाश में एक शब्द है तलाश। जरा इस पर ध्यान दीजिये। सब-कुछ बदरंग हो चुका है। मूल्यों की नैतिक अवधारणा बदल चुकी है, या कहिये, बदल दी गई है। व्यक्तिवाद है। स्वार्थ की आपाधापी है। बुद्ध की अहिंसा, महावीर की करुणा और ईसा का प्रेम इतिहास की पुस्तकों में लिखा रह गया है। समग्रता में कवयित्री की आकांक्षा, जो सिर्फ अपनी नहीं है, सबके लिये अपनी कविताओं में यह प्रतीकात्मक संदेश देतीं है कि एकरसता जीवन का शुष्क दैनिक कार्यक्रम नहीं है। वह जीवन जीना चाहता है, जीवन की विविधताओं में संगीत की सिम्फनी चाहता है। उषा की कविताएं यही संदेश देती हैं कि पूरब हो या पच्छिम, सब इस यांत्रिक जीवन से छुटकारा पाने के लिये ऐसे इन्द्रधनुष की तलाश करें जो दुःख में, सुख में, कल्पना में, यथार्थ में जीवन को बहुरंगी, पारस्परिक और संगीतमय तान दे सकें।

डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम
रीडर, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

अपनी ओर से

बचपन से ही लिखना चाहती थी, लिखा भी.....जीवन भर एक इन्द्रधनुष की तलाश में भटकती रही.... .भारत से लंदन पहुंच गई.....पर मेरा इन्द्रधनुष नहीं मिला, मिलता भी कैसे? सतरंगा इन्द्रधनुष क्षितिज के पार झिलमिलाता रहा, नयनों से दूर! बांहों से परे....

एक खोज

एक सुलगन

एक आस

जीवन भर तपन देती रही,

राख में दबी चिन्गारी-सी,

बहुत सुलगी हूं बहुत तपी हूं

अन्दर का ताप भाप उगलता,

बूंद-बूंद पसीजता,

लगता

कहीं अतल गहराई में मेरा पुनर्जन्म हो रहा है।

इस सिन्धु-मंथन से निकली अनगढ़ सीपियां सुधी पाठकों को सौंपती हूँ।
यदि कोई भी रचना 'आपको अपनी-सी लगे तो समझूंगी कि मेरे अंतर्मन की पीड़ा के नैवेद्य से अर्चना पूरी हुई।

हमारी भारतीय परम्परा में रचनाकार में जन्म से ही प्रतिभा हो तभी वह रचना-कर्म कर सकता है, ऐसा मानते हुए भी प्रेरणा की भी बहुत महत्व दिया गया है। बचपन से ही मुझे अपने परिवार से धरोहर का रूप में काव्य-संस्कार मिले। शिक्षा-ग्रहण करने के बाद गृहस्थी के पाटों में पिस ही गई होती यदि श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने मुझमें काव्य-बीज देखते हुए मुझे स्नेह और उत्साह न दिया होता। लंदन-प्रवास में यद्यपि में हिन्दी में कविताएं लिखने लगी थी लेकिन इस रचना-कर्म में, वहां रहते मैं हीन भावना का ही शिकार रहती यदि मेरा

संपर्क महामहिम भारतीय उच्चायुक्त डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी एवं श्रीमती कमला सिंघवी के साथ न हुआ होता।

असल में लंदन जैसे शहर में हिन्दी-साहित्य और संस्कृति का जिस स्वाभिमान के साथ प्रचार और प्रसार सिंघवी दम्पत्ति ने किया उससे न केवल हम भारतीय प्रवासियों का माथा ऊंचा उठा बल्कि विलायत जैसे देश में भारतीय अस्मिता को प्रसरित होने का मौका मिला। मेरे जैसी हिन्दी-अनुरागी के लिये तो सिंघवी जी संजीवन मंत्र बन कर आये। अंधेरे वातावरण में उषा को काव्य-प्रकाश देने का श्रेय उन्हीं को जाता है। मैं अपने प्रेरणा-स्रोत को श्रद्धा-सहित नमन करती हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि जैसे ये मेरी प्रेरणा-भूमि बने वैसे अन्य हिन्दी-सेवी भारतीयों के मार्गदर्शक भी बनते रहेंगे। मेरी इन कविताओं में अनुभव की आंच तो मेरी अपनी है लेकिन शब्द-प्रेरणा उनकी। इन कविताओं में जहां-जहां भारतीय परिवेश और संस्कृति की सोंधी महक मिले वह सब उनकी देन है। ये कविताएं सहज मन की अभिव्यक्ति हैं। जो अच्छा लगे उसका श्रेय महामहिम को जाये और जो काव्यानुभव अधबुने-से दिखते हों उसकी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेती हूं। भविष्य में मेरी यह कोशिश रहेगी कि अपने अनुभवों को शब्द देने के लिये मैं सदैव अपने संवेदनात्मक अनुभवों को कलात्मक उभार देती रहूं। अस्तु!

उषा 'राजे' सक्सेना

54 हिल रोड, मिचैम

सी.आर. 42.एच. क्यू.

अनुक्रम

इन्द्रधनुष की तलाश में	17
एहसास	18
कहानी एक दरख्त की	19
दुखती रगें	21
ओ! मेरे रहस्यमय	23
ओ! मेरे जिल्दसाज	24
ओ! धुनिये	25
सौम्य तुम मंद मंद मुस्कराते	27
मृत्यु के भटकते पद-चाप	32
रात भर रोया अन्धेरा	34
रंग मेरा बहुत गहरा	36
अभिशप्त घाटी	38
अंधा शहर	40
दीवाली	41
पतझर के पत्ते	42
आत्माएं	45
तीन क्षणिकाएं	47
प्रवासी की पत्नी और उसकी व्यथा	48
स्वाभिमान से जीना	51

आज की नारी	52
हंसी	53
क्या तुम नहीं आओगे	54
तेरा सहारा	57
पुरानी दास्तां	58
विरहन की रात	59
प्यार की उम्र	60
याद आती है	61
बात	62
हिन्दी भाषा	64
देश बन गया परदेस	67
सांप और फरिश्ता	69
नौकरी	70
प्यार का इन्तजार	71
वक्त का नासूर	72
मुर्दा शहर	73
नवजीवन के बीज	75
पलकों के झरोखों से	76
सृजन	77
इतना अर्थ	78
आन्तरिक ताप	79
क्षण	80

यादों के तीर	81
तुम्हारी याद	82
दर्द के बगूले	83
प्यार	84
तुम्हारी जड़ें	85
जम्मू की एक सुबह	86
प्राणों की संजीवनी	88
दलित	89
पानी	91
लम्हा	93
मैं तेरी कौन हूं?	94

अ-छांदिक धनुष

इन्द्रधनुष की तलाश में

बहुत भटकी हूं
एक इन्द्रधनुष की तलाश में
डरती हूं
यदि मिल भी जाए मेरा इन्द्रधनुष
तो
कहीं खो न जाए....

पर मिले
और मिले भी कैसे?

एक कदम उसकी ओर बढ़ाती हूं
तो एक कदम वह मुझसे पीछे हट जाता
क्षितिज-सा
नयनों के सामने
बाहों से परे....

खोने-पाने
और पा लेने की चाह
युगों की प्रतीक्षा
यक्ष-प्रश्न-सी सालती रही